तत्त्वार्थ सूत्र

अखिलेश मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्मति साहित्य रत्नमाला का ५१वाँ रत्न

तत्त्वार्थ-सूत्र

[संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद]

सम्पादक
श्रद्धेय प्रवर्तक पूज्यश्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज
के
सुशिष्य मुनिश्री अमोलकचन्द्रजी 'अखिलेश'

प्रकाशक :

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- **पुस्तक :**
  तत्त्वार्थ-सूत्र

- **सम्पादक :**
  अखिलेशमुनि

- **प्रकाशक :**
  सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा

- **संस्करण :**
  प्रथम—१९५७
  द्वितीय—१९६६
  तृतीय—१९७५
  चतुर्थ—१९८५
  पञ्चम—२००१

- **मूल्य :** ८/- (आठ रुपए मात्र)

- **मुद्रक :**
  रवि ऑफसेट प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.
  ५/१६९/१, लता कुँज, आगरा-मथुरा मार्ग, आगरा-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

आचार्य उमास्वाति-विरचित **''तत्त्वार्थ-सूत्र''** एक सुप्रसिद्ध तत्त्व-ग्रन्थ है। यह जितना लघु है, उतना विराट भी। जैन आचार्यों ने अपनी टीकाओं द्वारा इस ग्रन्थ को जितना पल्लवित किया है, उतना अन्य किसी को नहीं किया। क्योंकि इसमें जैन धर्म और जैन दर्शन के सभी विषयों का परिचय आचार्यश्री ने बड़ी ही सुगम शैली में दिया है।

संस्कृत भाषा में 'तत्त्वार्थ-सूत्र' पर विशाल और विस्तृत टीकाएँ हैं। हिन्दी भाषा में भी इस पर विस्तृत विवचेन लिखे गए हैं। परन्तु मूलपाठ करने वालों के लिए और कण्ठस्थ करने वालों के लिए कोई सुन्दर संस्करण इसका उपलब्ध नहीं हो रहा था। इस अभाव की पूर्ति करने का हमारा संकल्प था।

मुझे प्रसन्नता है, कि पण्डितरत्न मुनिश्री अमोलकचन्दजी महाराज 'अखिलेश' ने परिश्रम करके शुद्ध मूल पाठ और शुद्ध हिन्दी अर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तैयार करके हमें दिया। मुनिश्री के परिश्रम के प्रति हम आभारी हैं। इस तात्विक ग्रन्थ की लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि यह इसका पञ्चम संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

आशा है, स्वाध्यायप्रेमी पाठक इस पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण से लाभ उठाएँगे। सन्मति ज्ञानपीठ का यह प्रयत्न ज्ञानवृद्धि में सहयोगी बन सकेगा। इसी भावना से यह प्रकाशन किया जा रहा है।

मंत्री

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्वार्थ-सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रथमोऽध्यायः

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षा-
स्तत्वम् ॥४॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थिति-
विधानतः ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहला अध्याय

१—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—ये तीनों मिल कर मोक्ष के मार्ग—साधन हैं।

२—तत्व रूप पदार्थों की श्रद्धा अर्थात् दृढ़ प्रतीति, सम्यग्- दर्शन है।

३—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग अर्थात् स्वभाव से और अधिगम अर्थात्—सद्गुरु के उपदेशादि बाह्य निमित्त से उत्पन्न होता है।

४—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात तत्व हैं।

५—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों द्वारा सम्यग्दर्शनादिकों का तथा जीवादि तत्वों का न्यास (लोक-व्यवहार) होता है।

६—प्रमाणों और नयों द्वारा जीवादि तत्वों का ज्ञान होता है। (प्रमाण वस्तु के सर्वांश को ग्रहण करता है तथा नय वस्तु के एकांश को ग्रहण करता है)।

७—निर्देश—वस्तुस्वरूप, २—स्वामित्व—मालिकपना, ३—साधन—कारण, ४—अधिकरण—आधार, ५—स्थिति— कालमर्यादा, ६—विधान—प्रकार, इनसे सम्यगदर्शनादि एवं जीवादि तत्वों का ज्ञान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्प-
बहुत्वैश्च ॥८॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि
ज्ञानम्॥९॥

तत् प्रमाणे ॥१०॥

आद्ये परोक्षम् ॥११॥

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध

इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८—तथा (१) सत् (सत्ता), (२) संख्या, (३) क्षेत्र, (४) स्पर्शन, (५) काल, (६) अन्तर (विरहकाल), (७) भाव (अवस्थाविशेष), (८) अल्पबहुत्व, इन अनुयोगों द्वारा भी सम्यग्दर्शनादि विषयों का तथा जीवादि तत्वों का बोध होता है।

९—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवल—ये पाँच ज्ञान हैं।

१०—वह पाँच प्रकार का ज्ञान दो प्रमाणरूप है।

११—पहिले के दो ज्ञान मति और श्रुत इन्द्रियादि निमित्त की अपेक्षा रखने से परोक्ष-प्रमाण हैं।

१२—शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष-प्रमाण हैं।

१३—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध—ये शब्द पर्यायभूत—एकार्थवाचक हैं।

१४—वह मतिज्ञान पांच इन्द्रियों और छठे मन के निमित्त से होता है।

१५—अवग्रह = विशिष्ट – कल्पनारहित सूक्ष्म अव्यक्त ज्ञान, इहा = विशेषतायुक्त विचारणा, अवाय = विशेष-निश्चय, धारणा = बहुत समय तक नहीं भूलना, इस प्रकार मतिज्ञान चार प्रकार का होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासंदिग्धध्रुवाणां
सेतराणाम् ॥१६॥

अर्थस्य ॥१७॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥

द्विविधोऽवधिः॥२१॥

तत्र भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ॥२२॥

यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः
शेषाणाम्॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६—बहु = अनेक, बहुविध = अनेक तरह, क्षिप्र = जल्दी, अनिश्रित = हेतु द्वारा असिद्ध, अनुक्त = बिना कहे जानना, ध्रुव = निश्चित, तथा इनके विपरीत एक, एकविध, अक्षिप्र = निश्रित, उक्त और अध्रुव इस तरह अवग्रहादि रूप मतिज्ञान होता है।

१७—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा—ये चारों मतिज्ञान अर्थवस्तु को ग्रहण करते हैं।

१८—व्यंजन—अप्रकटरूप (अव्यक्त), पदार्थ का केवल अवग्रह ही होता है। [ईहादिक अन्य तीन नहीं होते।]

१९—वह अप्रकटररूप (अव्यक्त), पदार्थों का अवग्रह नेत्र और मन से नहीं होता। [मात्र शेष चार इन्द्रियों से ही होता है।]

२०—श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। उसके अङ्गबाह्य और अंगप्रविष्ट ये दो मुख्य भेद हैं। उसमें पहिला अनेक भेद वाला तथा दूसरा बारह भेद वाला है।

२१—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय=क्षयोपशमजन्य के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है।

२२—भवप्रत्यय-अवधिज्ञान नारकों और देवताओं को होता है।

२३—गर्भ से उत्पन्न हुए मनुष्यों ओर तिर्यंचों को क्षयोपशमजन्य अवधिज्ञान होता है और वह अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित ओर अनवस्थित के भेद से छह प्रकार का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुविपुलमती मनःपर्यायः ॥२४॥

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२५॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः-
पर्याययोः ॥२६॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्व-
पर्यायेषु ॥२७॥

रूपिष्ववधेः ॥२८॥

तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य ॥२९॥

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना
चतुर्भ्यः ॥३१॥

मतिश्रुताऽवधयो विपर्ययश्च ॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४—ऋजुमति और विपुलमति—ये दो मन:पर्याय-ज्ञान के भेद हैं।

२५—ऋजुमति और विपुलमति में विशुद्धि (शुद्धता) और अप्रतिपात (एक बार होने के बाद फिर नष्ट न होना), इन दोनों की अपेक्षा से अन्तर है।

२६—विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय के द्वारा अवधि और मन:पर्याय का अन्तर जानना चाहिए।

२७—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति-ग्राह्यतासर्व-पर्यायरहित अर्थात् परिमित पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है।

२८—अवधिज्ञान की प्रवृत्ति सर्वपर्यायरहित केवल रूपी मूर्त द्रव्यों में होती है।

२९—मन:पर्यायज्ञान की प्रवृत्ति उस सर्वपर्यायरहित रूपी द्रव्य के अनन्तवें भाग में होती है।

३०—केवलज्ञान की प्रवृत्ति सभी द्रव्यों में और सभी पर्यायों में होती है।

३१—एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं।

३२—मति, श्रुत और अवधि ये तीनों विपरीत अर्थात् अज्ञानरूप भी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धे-

रुन्मत्तवत् ॥३३॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा

नयाः ॥३४॥

आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ ॥३५॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३—उन्मत्त की तरह सत्-असत् के विवेक से शून्य यदृच्छा ज्ञान को मिथ्याज्ञान-अज्ञान कहा है।

३४—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द (समभिरूढ़ और एवंभूत) ये नय के पाँच भेद हैं।

३५—पहिले अर्थात् नैगमनय के देशपरिक्षेपी और सर्वपरिक्षेपी ये दो भेद हैं, तथा दूसरे शब्दनय के सांप्रत, समभिरूढ़ और एवंभूत ये तीन भेद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितीयोऽध्यायः

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्यस्वतत्वमौदयिकपारिणामिकौ च ।। १ ।।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ।। २ ।।

सम्यक्त्वचारित्रे ।। ३ ।।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च।। ४ ।।

ज्ञानाज्ञान-दर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रि-त्रिपञ्चभेदा यथाक्रमं सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ।। ५ ।।

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽ- सिद्धत्वलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकै-षड्भेदाः ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा अध्याय

१—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र—क्षायोपशमिक, औदयिक और परिणामिक ये पाँच भाव जीव के स्वतत्व हैं।

२—उक्त पाँच भावों के अनुक्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।

३—औपशमिक भाव के औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो भेद हैं।

४—केवलज्ञान, केवलदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य तथा सम्यक्त्व और चारित्र ये नौ भेद क्षायिकभाव हैं।

५—चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, दानादि पाँचलाब्धियाँ, क्षायोपशमिक, सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम, ये अठारह भेद क्षायोपशमिक भाव के हैं।

६—चार गति, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, छह लेश्या—इस तरह कुल मिलाकर इक्कीस भेद औदयिक भाव के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवभव्याभव्यत्वादीनि च ।। ७ ।।

उपयोगो लक्षणम् ।। ८ ।।

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद : ।। ९ ।।

संसारिणो मुक्ताश्च ।। १० ।।

समनस्काऽमनस्काः ।। ११ ।।

संसारिणस्त्रसस्थावराः ।। १२।।

पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ।। १३ ।।

तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः ।। १४ ।।

पञ्चेन्द्रियाणि ।। १५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व—ये तीन पारिणामिक भाव है तथा च शब्द ये अस्तित्व, नित्यत्व, प्रदेशत्व आदि भावों का भी ग्रहण होता है।

८—उपयोग, जीव का लक्षण है।

९—वह उपभोग दो प्रकार का है—ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग। पहला ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादि के भेद से आठ प्रकार का है तथा दूसरा दर्शनोपयोग चक्षुदर्शनादि के भेद से चार प्रकार का है।

१०—संसारी और मुक्त अवस्था के भेद से जीव दो प्रकार के हैं।

११—मनसहित संज्ञी और मनरहित असंज्ञी, ये संसारी जीवों के दो भेद हैं।

१२—संसारी जीवों के त्रस और स्थावर-ये भी दो भेद हैं।

१३—पृथ्वीकाय, जलकाय और वनस्पतिकाय ये तीनों स्थावर जीवों के भेद है।

१४—अग्निकाय, वायुकाय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की त्रस संज्ञा है।

१५—स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विविधानि ।। १६ ।।

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।। १७।।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।। १८।।

उपयोगः स्पर्शादिषु ।।१९।।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ।।२०।।

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तेषामर्थाः ।।२१।।

श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।२२।।

वाय्वन्तानामेकम् ।।२३।।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामे

कैकवृद्धानि ।।२४।।

संज्ञिनः समनस्काः ।।२५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद से प्रत्येक इन्द्रिय दो प्रकार की है।

१७—दृश्यमान बाह्य आकृतिरूप 'निवृत्ति इन्द्रिय' और बाह्य तथा आन्तरिक पौद्गलिक शक्तिविशेष 'उपकरण इन्द्रिय'—इस प्रकार द्रव्येन्द्रिय के दो भेद हैं।

१८—लब्धि—क्षयोपशमविशेष और उपयोग—बोधरूप व्यापार, ये दो भेद भावेन्द्रिय के हैं।

१९—स्पर्शादि विषयों में इन्द्रियों का उपयोग होता है।

२०—स्पर्शन = त्वचा, रसना= जीभ, घ्राण = नाक, चक्षु= आँख और श्रोत्र = कान, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

२१—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द, ये पूर्वोक्त अनुक्रम से पाँच इंन्द्रियों के विषय हैं।

२२—श्रुतज्ञान, अनिन्द्रिय = मन का विषय है, मनोनिमित्तक है।

२३—पृथ्वीकाय से ले कर वायुकाय तक जीवों के केवल एक स्पर्शन-इन्द्रिय होती है।

२४—कृमि = कीडा, पिपीलिका = कीड़ी, भ्रमर = भौंरा और मनुष्य आदि के क्रम से एक एक इन्द्रिय अधिक होती है।

२५—संज्ञी जीव ही मन वाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।२६।।

अनुश्रेणि गतिः ।।२७।।

अविग्रहा जीवस्य ।।२८।।

विग्रहवती च संसारिणः
प्राक्चतुर्भ्यः ।।२९।।

एकसमयोऽविग्रहः ।।३०।।

एकं द्वौ वाऽनाहारकः ।।३१।।

सम्मूर्छनगर्भोपपाता जन्म ।।३२।।

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैक-

शस्तद्योनयः।।३३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६—विग्रहगति में कार्मण-योग ही होता है।

२७—गति, अनुश्रेणि अर्थात् आकाशप्रदेशों की सरलरेखा के अनुसार होती है।

२८—मोक्ष में जाते हुए जीव की गति विग्रहरहित (बिना मोड़ की) होती है।

२९—संसारी आत्मा की गति अविग्रह और सविग्रह दोनों प्रकार की होती है। विग्रह = मोड़ चार से पहले अर्थात् तीन तक हो सकते हैं।

३०—अविग्रहगति केवल एक समय की होती है।

३१—विग्रहगति में एक अथवा दो समय तक जीव अनाहारक होता है।

३२—संसारी जीवों के सम्मूर्छन, गर्भ और उपपात ये तीन प्रकार के जन्म होते हैं।

३३—तीन प्रकार के जन्म वाले जीवों की सचित्त, शीत और संवृत—गुप्त तथा इनके प्रतिपक्षी अचित्त, उष्ण और विवृत—प्रकट तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शितोष्ण एवं संवृतविवृत ये नौ योनियाँ होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जराय्वण्डपोतजानां गर्भः ॥३४॥

नारकदेवानामुपपातः ॥३५॥

शेषाणां सम्मूर्छनम् ॥३६॥

औदारिकवैक्रियाऽऽहारकतैजसकार्मणा-
निशरीराणि ॥३७॥

परं परं सूक्ष्मम् ॥३८॥

प्रदेशतोऽसंख्येगुणं प्राक् तैजसात् ॥३९॥

अनन्तगुणे परे ॥४०॥

अप्रतिघाते ॥४१॥

अनादिसम्बन्धे च ॥४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४—जरायु से पैदा होने वाले, अंडे से पैदा होने वाले तथा पोतज जीवों का गर्भ-जन्म होता है।

३५—नारकों और देवों का उपपात-जन्म होता है।

३६—पृथ्वीकाय आदि शेष जीवों का सम्मूर्छन जन्म होता है।

३७—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्माण-ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं।

३८—उक्त पाँचों शरीरों में आगे-आगे के शरीर पूर्व-पूर्व शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म हैं।

३९—तैजस के पूर्ववर्ती तीन शरीरों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर शरीर प्रदेशों—स्कन्धों की अपेक्षा से असंख्यात गुण अधिक होते हैं।

४०—आगे के दो शरीर—तैजस और कार्मण पहिले के शरीरों की अपेक्षा अनंतगुण प्रदेश वाले हैं। अर्थात् आहारक से तैजस के और तैजस से कार्मण के प्रदेश अनंतगुने होते हैं।

४१—तैजस और कार्मण शरीर प्रतिघात-बाधा से रहित हैं।

४२—ये दोनों शरीर आत्मा के साथ अनादि काल से संबन्ध रखने वाले हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वस्य ॥४३॥

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याऽऽ-

चतुर्भ्यः ॥४४॥

निरुपभोगमन्त्यम् ॥४५॥

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥४६॥

वैक्रियमौपपातिकम् ॥४७॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥४८॥

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं चतुर्दशपूर्वधरस्यैव ॥४९॥

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

न देवाः ॥५१॥

औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५२॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३—ये दोनों शरीर सब संसारी जीवों के होते हैं।

४४—एक जीव के एक साथ तैजस और कार्मण से ले कर चार शरीर तक—विकल्प से हो सकते हैं।

४५—केवल अंतिम—कार्मण शरीर उपभोग अर्थात् सुख-दुःख आदि के अनुभव से रहित है।

४६—पहिला औदारिक शरीर गर्भ और सम्मूर्छन जन्म से पैदा होने वाले जीवों के होता है।

४७—उपपात जन्म से होने वाले जीवों—नारकों और देवों के वैक्रिय शरीर होता है।

४८—तपोविशेष से लब्धिप्राप्त जीवों को भी वैक्रियशरीर प्राप्त होता है।

४९—आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघातरहित होता है तथा यह चौदह पूर्वधारी मुनियों के ही होता है।

५०—नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक ही होते हैं।

५१—देव नपुंसक नहीं होते हैं।

५२—उपपात जन्म से होने वाले देव, नारक तथा चरमशरीरी, उत्तम पुरुष और असंख्यात वर्ष की आयु वाले यौगलिक, ये सब अनपवर्तनीय आयुष्य वाले ही होते हैं।

✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तृतीयोऽध्यायः

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः
प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः
सप्ताधोऽधः पृथुतराः ॥१॥

तासु नरकाः ॥२॥

नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदना-
विक्रियाः ॥३॥

परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥

संक्लिष्टासुरोदीरितदुखाश्च प्राक्
चतुर्थ्याः ॥५॥

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिं-
शत्सागरोपमाः सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

जम्बूद्वीपलवणादयः शुभनामानो
द्वीपसमुद्राः ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा अध्याय

१—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात नरक भूमियाँ हैं। जो घनाम्बु, घनवात और आकाश पर स्थित हैं, एक दूसरे के नीचे हैं तथा नीचे की ओर अधिक विस्तीर्ण हैं।

२—उन भूमियों में नरक हैं, अर्थात् नारक जीव रहते हैं।

३—वे नारक नित्य अशुभतर लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रिया वाले हैं।

४—और ये परस्पर उत्पन्न किये गए दुःख वाले होते हैं।

५—तथा संक्लिष्ट परिणाम वाले असुरजाति के परमाधर्मी देव भी चौथे नरक के पहले पहले अर्थात् तीसरे नरक तक अनेक कष्ट पहुँचते हैं।

६—उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस तथा तैतीस सागरोपम की है।

७—जम्बुद्वीप तथा लवणोदधि आदि शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र मध्यलोक में हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो
वलयाकृतयः ।।८।।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र-
विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।९।।

तत्र भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यव-
तैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।१०।।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा-
हिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो-
वर्षधरपर्वताः ।।११।।

द्विर्धातकीखण्डे ।।१२।।

पुष्करार्धे च ।।१३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८—वे सभी द्वीप और समुद्र, वलय = कंगन जैसी गोल आकृति वाले, पूर्व-पूर्व को वेष्टित करने वाले और दूने-दूने विष्कम्भ= व्यास अर्थात् विस्तार वाले हैं।

९—उन सब के बीच में जम्बूद्वीप है, जो वृत्त= कुम्हार के चाक के समान गोल है, लाख योजन विष्कम्भ वाला है और जिसके मध्य में मेरुपर्वत है।

१०—जम्बूद्वीप में भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष,—ये सात क्षेत्र हैं।

११—उन क्षेत्रों को पृथक् करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे हिमवान् महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी, और शिखरी—ये छह वर्षधर पर्वत हैं।

१२—'धातकीखण्ड' नामक दूसरे द्वीप में भरत आदि क्षेत्र और हिमवान् आदि पर्वत दो-दो हैं।

१३—पुष्करद्वीप के आधे भाग में भी धातकीखण्ड के समान भरत आदि क्षेत्र और हिमवान् आदि पर्वत जम्बूद्वीप से दुगुने हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राङ् मानुषोत्तरान् मनुष्याः ॥१४॥

आर्या म्लेच्छाश्च ॥१५॥

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देव-कुरूत्तरकुरुभ्यः ॥१६॥

नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥१७॥

तिर्यग्योनीनां च ॥१८॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४—मानुषोत्तर पर्वत के पहिले पहिले ही अढ़ाई द्वीप में मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

१५—ये मनुष्य आर्य और म्लेच्छ के भेद से दो प्रकार के हैं।

१६—देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों को छोड़ कर पाँच भरत पाँच ऐरावत और पाँच विदेह इस प्रकार पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं।

१७—मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की, तथा जघन्य स्थिति अन्तमुर्हूत की है।

१८—तिर्यंचों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की व जघन्य अंतमुर्हूत की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थोऽध्यायः

देवाश्चतुर्निकायाः ।।१।।

तृतीयः पीतलेश्यः ।।२।।

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्न-
पर्यन्ताः ।।३।।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषद्यात्मरक्ष-
लोक पालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्वि-
षिकाश्चैकशः।।४।।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या
व्यन्तरज्योतिष्काः ।।५।।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।।६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथा अध्याय

१—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक—इस प्रकार देवों के चार निकाय = वर्ग हैं।

२—तीसरे निकाय के देव—ज्योतिष्क, पीतलेश्या वाले होते हैं।

३—भवनवासी के दस, व्यंतर के आठ, ज्योतिष्क के पाँच और कल्पोपपन्न वैमानिक के बारह भेद हैं।

४—इन चारों प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक = आयु आदि में इंद्र के समान, किन्तु इन्द्रपद से रहित, त्रायस्त्रिंश = मंत्री अथवा पुरोहित के तुल्य, परिषद् = मित्र के तुल्य, आत्मरक्ष = अंगरक्षक, लोकपाल = राज्यपाल (गर्वनर के समान), अनीक = सेना- तुल्य, प्रकीर्णक = प्रजास्थानीय, आभियोग्य = दास तुल्य, किल्विषिक अन्त्यज के समान, दस दस भेद होते हैं।

५ —व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल, ये दो भेद नहीं होते हैं।

६—पहिले के दो निकायों में (भवनवासी और व्यन्तर में) दो दो इन्द्र होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीतान्तलेश्याः ॥७॥

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥८॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचारा-
द्वयोर्द्वयोः ॥९॥

परेऽप्रवीचाराः ॥१०॥

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवा-
तस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥११॥

व्यन्तराः
किन्नरकिंपुरुषमहोरगगान्धर्वयक्ष-
राक्षसभूतपिशाचाः ॥१२॥

ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकी-
र्णतारकाश्च ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७—प्रथम के दो निकायों में—भवनपति और व्यन्तर में, कृष्णा, नील, कापोत और तेज, ये चार लेश्याएँ होती हैं।

८—ऐशान स्वर्ग तक के देव मनुष्यों के समान शरीर से विषयसुख भोगने वाले होते हैं।

९—शेष दो दो कल्प के देव क्रमशः स्पर्श, रूप, शब्द और सङ्कल्प द्वारा विषयसुख भोगते हैं।

१०—शेष ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विषयसेवन से रहित हैं।

११—भवनवासी देव—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) विद्यत

कुमार, (४) सुपर्णकुमार, (५) अग्निकुमार, (६) वायुकुमार, (७) स्तनितकुमार, (८) उदधिकुमार, (९) द्वीपकुमार, (१०) दिक्कुमार के भेद से दस प्रकार के हैं।

१२—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच, ये आठ प्रकार के व्यंतरदेव होते हैं।

१३—ज्योतिष्क देव—(१) सूर्य, (२) चन्द्रमा, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र, (५) और प्रकीर्ण-तारे—इस तरह पाँच प्रकार के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।। १४।।

तत्कृतः कालविभागः ।।१५।।

बहिरवस्थिताः ।।१६।।

वैमानिकाः ।।१७।।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।।१८।।

उपर्युपरि ।। १९।।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकमहाशुक्रसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्ताऽपराजितेषु सर्वार्थसिद्धै च ।।२०।।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ।।२१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४—ये सब ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक में सुमेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरंतर गमन करने वाले हैं।

१५—घड़ी, पल आदि काल का विभाग इन्हीं चर ज्योतिष्कों द्वारा होता है।

१६—मनुष्यलोक से बाहर सब ज्योतिष्क अवस्थित= स्थिर है।

१७—विमानों में रहने वाले वैमानिक देव कहलाते हैं।

१८—उक्त वैमानिक देव कल्पोपन्न और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के हैं।

१९—वे एक दूसरे के ऊपर स्थित हैं।

२०—सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन १२ स्वर्गों में तथा नौ ग्रैवेयकों में और विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्ध में वैमानिक देवों का निवास है।

२१—आयु, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्या की विशुद्धि, इन्द्रियों का ओर अवधिज्ञान का विषय, ये सब ऊपर-ऊपर के देवाताओं में अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२२॥

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२३॥

प्राग् ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२४॥

ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः ॥२५॥

सारस्वतादित्यवह्नयरुणगर्दतोयतुषिताव्या

बाधमरुतोऽरिष्टाश्च ॥२६॥

विजयादिषु द्विचरमाः॥२७॥

औपपातिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्यो-

नयः ॥२८॥

स्थितिः ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२—किंतु गति, शरीर का परिमाण, परिग्रह और अभिमान, इन विषयों में ऊपर ऊपर के देव हीन हैं।

२३—सौधर्म और ऐशान में पीतलेश्या, सानत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में पद्मलेश्या और लान्तक से ले कर सर्वार्थसिद्ध तक शुक्ललेश्या होती है।

२४—ग्रैवेयकों से पहिले के स्वर्ग कल्प कहलाते हैं, अर्थात् इन्द्रादिक भेद वाले हैं।

२५—जो पाँचवें ब्रह्मलोक स्वर्ग के अन्त में रहते हैं, वे लोकान्तिक देव हैं।

२६—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध मरुत् ओर अरिष्ट ये नौ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं।

२७—विजयादिक चार विमानों के देव द्विचरम अर्थात् दो बार मनुष्य जन्म ले कर मोक्ष पाते हैं ओर सर्वार्थसिद्ध के देव केवल एक भव धारण कर मोक्ष पाते हैं।

२८—देव, नारक और मनुष्यों के अतिरिक्त शेष सब जीव तिर्यंच हैं।

२९—अब स्थिति = आयु का वर्णन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्य-
र्धम् ॥३०॥

शेषाणां पादोने ॥३१॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२॥

सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ॥३३॥

सागरोपमे ॥३४॥

अधिके च ॥३५॥

सप्त सानत्कुमारे ॥३६॥

विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदश-
भिरधिकानि च ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०—भवनवासियों के दक्षिणार्द्ध = मेरु से दक्षिण की ओर के अधिपातियों = इन्द्रों की उत्कृषट स्थिति डेढ़ पल्योपम की होती है।

३१—शेष के अर्थात् उत्तरार्द्धपति इन्द्रों की उत्कृष्ट स्थिति पौने दो पल्योपम की हैं।

३२—असुरकुमार के दक्षिणार्द्धपति इन्द्रों की एक सागरोपम तथा उत्तरार्द्धापति इन्द्रों की एक सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थति है।

३३—सौधर्मादि देवलोकों में निम्न क्रमानुसार स्थिति जानना चाहिए।

३४—सौधर्म देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागरोपम की है।

३५—ऐशान देवलोक के देवों की दो सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

३६—सानत्कुमार देवलोक के देवों की सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

३७—माहेन्द्र देवलोक में सात सागरोपम से अधिक, ब्रह्मलोक में दस, लान्तक में चौदह, महाशुक्र में सतरह, सहस्रार में अठारह, आनत एवं प्राणत में बीस और आरण एवं अच्युत में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च ॥३८॥

अपरा पल्योपममधिकं च ॥३९॥

सागरोपमे ॥४०॥

अधिके च ॥४१॥

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥४२॥

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥४३॥

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥४४॥

भवनेषु च ॥४५॥

व्यन्तराणां च ॥४६॥

परा पल्योपमम् ॥४७॥

ज्योतिष्काणामधिकम् ॥४८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८—आरण और अच्युत से ऊपर से ऊपर नौ ग्रैवेयक; चार विजयादि अनुत्तर विमान और सर्वार्थसिद्ध में क्रम से एक-एक सागरोपम बढ़ती हुई स्थिति=आयु है।

३९—सौधर्म देवलोक में जघन्य स्थिति एक पल्योपम की तथा ऐशान में एक पल्योपम से कुछ अधिक जघन्य स्थिति है।

४०—सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

४१—माहेन्द्र में दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

४२—पहिले पहिले कल्प की उत्कृष्ट स्थिति आगे आगे के कल्पों में जघन्य स्थिति है। सर्वार्थसिद्ध में जघन्य स्थिति नहीं होती।

४३—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि नरकों में भी जघन्य आयु समझ लेनी चाहिए।

४४—पहले नरक में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु है।

४५—भवनवासियों में भी दस हजार वर्ष का जघन्य स्थिति है।

४६—व्यंतरदेवों की भी जघन्य स्थिति इतनी ही है।

४७—व्यंतरों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की है।

४८—सूर्य और चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्रो व ज्योतिषकों की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहाणामेकम् ।।४९।।

नक्षत्राणामर्धम् ।।५०।।

तारकाणां चतुर्भागः ।।५१।।

जघन्या त्वष्टभागः ।।५२।।

चतुर्भागः शेषाणाम् ।।५३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९—ग्रहों की एक एक पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

५०—नक्षत्रों की उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्योपम की है।

५१—ताराओं की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के चौथे भाग परिमाण है।

५२—ताराओं की जघन्य स्थिति एक पल्योपम के आठवें भाग परिमाण है।

५३—ताराओं के सिवाय बाकी के ज्योतिष्कों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम का चौथा भाग परिमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमोऽध्यायः

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥

द्रव्याणि जीवाश्च ॥२॥

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥३॥

रूपिणः पुद्गलाः ॥४॥

आऽऽकाशादेकद्रव्याणि ॥५॥

निष्क्रियाणि च ॥६॥

असङ्ख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः ॥७॥

जीवस्य च ॥८॥

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवाँ अध्याय

१—धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीवकाय हैं, अर्थात् अचेतन ओर बहुप्रदेशी पदार्थ हैं।

२—पूर्वोक्त चार अजीवकाय और जीव, ये पाँचों द्रव्य कहलाते हैं।

३—ये द्रव्य नित्य= कभी नष्ट नहीं होने वाले, अवस्थित=संख्या में घटने बढ़ने से रहित, और अरूपी हैं।

४—किन्तु पुद्गलद्रव्य रूपी हैं।

५—धर्मास्तिकाय से ले कर आकाश तक द्रव्य एक एक हैं।

६—और ये तीनों ही द्रव्य चलन-रूप क्रिया से रहित हैं।

७—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात हैं।

८—और एक जीव के प्रदेश भी असंख्यात हैं।

९—आकाश के अनंत प्रदेश हैं। (किन्तु लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं।)

१०—पुद्गलों के प्रदेश संख्यात, असंख्यात और अनंत होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणोः ॥११॥

लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

असङ्ख्येयभागादिषु जीवानाम् ।१५॥

प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयो-
रुपकारः ॥१७॥

आकाशस्यावगाहः ॥१८॥

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गला-
नाम् ॥१९॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११—अणु = परमाणु के प्रदेश नहीं होते।

१२—इन समस्त धर्मादि द्रव्यों की अवस्थिति लोकाकाश में है।

१३—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य की स्थिति समग्र लोकाकाश में है।

१४—पुद्गलों की स्थिति लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प=अनियतरूप से जानना चाहिए।

१५—लोक के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह है।

१६—क्योंकि दीपक के प्रकाश के समान जीवों के प्रदेशों में संकोच और विस्तार होता है।

१७—जीव ओर पुद्गलों की गतिक्रिया में धर्मद्रव्य तथा स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य सहकारी है।

१८—अवकाश अर्थात् जगह देना, यह आकाशद्रव्य का उपकार है।

१९—शरीर, वचन, मन, उच्छ्वास, निःश्वास—यह पुद्गलों का उपकार है।

२०—तथा सुख, दुःख, जीवन और मरण भी पुद्गलों के ही उपकार हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया ऽऽतपोद्द्योतवन्तश्च ॥२४॥

अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

भेदादणुः ॥२७॥

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥२८॥

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१—हिताहित के उपदेश आदि से परस्पर एक दूसरे का सहायक होना जीवों का उपकार है।

२२—वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये पाँचकाल के उपकार हैं।

२३—स्पर्श, रस, गंध और वर्ण वाले पुद्गलद्रव्य हैं।

२४—तथा ये पुद्गल शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप = धूप, उद्द्योत = शीतलप्रकाश वाले भी हैं।

२५—पुद्गल परमाणुरूप और स्कन्धरूप है।

२६—संघात = एकत्रित करना, भेद = भाग करना और संघात-भेद इन तीनों कारणों से स्कन्ध पैदा होते हैं।

२७—अणु भेद से ही होता है, संघात से नहीं।

२८—जो नत्रेन्द्रिय-गोचर स्कन्ध होता है, वह भेद और बात दोनों से ही होता है।

२९—जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता से युक्त है, वही सत् है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३०॥

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३१॥

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः॥३२॥

न जघन्यगुणानाम् ॥३३॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३४॥

द्वयधिकादिगुणानां तु ॥३५॥

बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ ॥३६॥

गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥३७॥

कालश्चेत्येके ॥३८॥

सोऽनन्तसमयः ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०—जो अपने मूल स्वरूप से नाश को प्राप्त नहीं होता है, वही नित्य है।

३१—वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। उनमें जो मुख्य रूप से वाच्य धर्म हो, वह अर्पित और जो गौण होने के कारण तत्क्षण अवाच्य धर्म हो, वह अनर्पित है। इन दोनों नयों से वस्तु व्यवहार की सिद्धि होती है।

३२—स्निग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है।

३३—एक गुण अर्थात् एक अंश वाले परमाणुओं का बन्ध नहीं होता।

३४—गुण की समानता होने पर भी सदृश पुद्गलों का बंध नहीं होता।

३५—किन्तु दो अधिक आदि गुण वालों का ही बंध होता है।

३६—बन्ध के समय सम और अधिक गुण, सम तथा हीन गुण को परिणमन करते हैं।

३७—द्रव्य, गुण-पर्याय वाला है।

३८—कोई-कोई आचार्य काल को द्रव्य मानते हैं।

३९—वह कालद्रव्य अनंत समय वाला है। यद्यपि वर्तमान काल एक समयात्मक है परन्तु भूत, भविष्यत्, वर्तमान की अपेक्षा अनंतसमय वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४०॥

तद्भावः परिणामः ॥४१॥

अनादिरादिमांश्च ॥४२॥

रूपिष्वादिमान् ॥४३॥

योगोपयोगौ जीवेषु ॥४४॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०—जो सदा द्रव्य के आश्रित रहते हों और स्वयं गुणों से रहित हों, वे गुण हैं।

४१—स्वरूप में स्थित होते हुए भी उत्पाद एवं विनाशरूप परिणमन होना, परिणाम हैं।

४२—वह परिणमन अनादि और सादि दो प्रकार का होता है।

४३—रूपी द्रव्यों में सादि परिणमन होता है।

४४—जीवों में योग और उपयोगरूप परिणमन सादि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठोऽध्यायः

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥१॥

स आस्रवः ॥२॥

शुभः पुण्यस्य ॥३॥

अशुभः पापस्य ॥४॥

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्या-

पथयोः ॥५॥

अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाः पञ्चचतुःपञ्च-

पञ्चविंशतिसङ्ख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥६॥

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभाववीर्याधिकरणविशेषे-

भ्यस्तद्विशेषः ॥७॥

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठा अध्याय

१—शरीर, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं।

२—वह योग ही कर्मों के आगमन का द्वार-स्वरूप आस्रव है।

३—शुभयोग पुण्य का आस्रव है।

४—अशुभयोग पाप का आस्रव है।

५—कषाय-सहित जीवों के साम्परायिक और कषाय-रहित जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है।

६—पाँच अव्रत, चार कषाय, पाँच इन्द्रिय और पच्चीस क्रिया—ये सब पहिले साम्परायिक आस्रव के भेद हैं।

७—तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, वीर्य ओर अधिकरण की विशेषता से उस आस्रव में विशेषता अर्थात् न्यूनाधिकता होती है।

८—आस्रव के अधिकरण = आधार जीव और अजीव दोनों हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारि-
तानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चै-
कशः ॥९॥

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वि-
त्रिभेदाः परम् ॥१०॥

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता
ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥११॥

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्म-
परोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥१२॥

भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः
क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१३॥

केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शन-
मोहस्य ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९—पहला जीवरूप अधिकरण क्रमशः सरम्भ, समारम्भ, आरम्भ भेद से तीन प्रकार का, योगभेद से तीन प्रकार का, कृत, कारित, अनुमतभेद से तीन प्रकार का और कषाय के भेद से चार प्रकार का है।

१०—पर अर्थात् अजीवाधिकरण निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्गरूप है; जो क्रमशः दो, चार, दो और तीन भेद वाला है।

११—ज्ञान और दर्शन के प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात—ये ज्ञानावरण-कर्म तथा दर्शनावरण-कर्म के बन्ध-हेतु=आश्रव हैं।

१२—निज आत्मा में, पर आत्मा में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन, ये असातवेदनीय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

१३—भूत-अनुकम्पा, व्रति-अनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग, शान्ति और शौच में सातवेदनीय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

१४—केवलज्ञानी, श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का बन्ध-हेतु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१५॥

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः ॥१६॥

माया तैर्यग्योनस्य ॥१७॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं, स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्य ॥१८॥

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि देवस्य ॥२०॥

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२१॥

विपरीतं शुभस्य ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५—कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्म-परिणाम चरित्र-मोहनीय कर्म का बन्धहेतु है।

१६—बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह, ये नरकायु के बन्ध हेतु हैं।

१७—माया तिर्यंच-आयु का बन्ध-हेतु है।

१८—अल्प-आरम्भ, अल्प-परिग्रह, स्वभाव की मृदुता और स्वभाव की सरलता, ये मनुष्य-आयु के बन्धहेतु हैं।

१९—शीलरहित और व्रतरहित होना सभी आयुष्यों के बन्धहेतु हैं।

२०—सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बाल-तप, ये देवायु के बन्धहेतु हैं।

२१—योग की वक्रता और विसंवाद, ये अशुभ नामकर्म के बन्ध-हेतु हैं।

२२—इसके विपरीत अर्थात् योग की अवक्रता और अवि-संवाद शुभ नामकर्म के बन्धहेतु हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वन-
तिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तित-
स्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधिवैयावृत्यकर-
णमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्य-
कापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्स-
लत्वमिति तीर्थ कत्त्वस्य ।।२३।।

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद-
भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।।२४।।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ
चोत्तरस्य ।।२५।।

विघ्नकरणमन्तरायस्य ।।२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३—सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतों में अत्यन्त अप्रमाद, ज्ञान में सतत उपयोग, तथा सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग और तप, संघ और साधु की समाधि और वैयावृत्य करना, अरिहंत, आचार्य, बहुश्रुत तथा प्रवचन की भक्ति करना, आवश्यक क्रिया का न छोड़ना, मोक्षमार्ग की भावना और प्रवचनवात्सल्य; ये सब तीर्थंकर नामकर्म के बन्ध-हेतु हैं।

२४—परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का आच्छादन = गोपन और असद्गुणों का प्रकाशन; ये नीचगोत्र के बन्ध-हेतु हैं।

२५—उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का प्रकाशन, असद्गुणों का गोपन तथा नम्रवृत्ति और नरभिमानता—ये उच्चगोत्रकर्म के बन्धहेतु हैं।

२६—दानादि में विघ्न डालना अन्तरायकर्म का बन्ध-हेतु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमोऽध्यायः

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो
विरतिर्व्रतम्॥१॥

देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ॥३॥

हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम् ॥४॥

दुःखमेव वा ॥५॥

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणा-
धिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ॥६॥

जगत्कायस्वभावौ च
संवेगवैराग्यार्थम् ॥७॥

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ अध्याय

१—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से—मन, वचन, काय द्वारा निवृत्त होना व्रत है।

२—अल्प अंश में विरति—अणुव्रत है और सर्वांश में विरति-महाव्रत है।

३—उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं।

४—हिंसा आदि पाँच दोषों में ऐहिक आपत्ति और पार-लौकिक अनिष्ट का दर्शन करना।

५—अथवा उक्त हिंसा आदि दोष दु:खरूप ही हैं, ऐसी भावना करना।

६—प्राणिमात्र पर मैत्री-वृत्ति, गुणाधिकों पर प्रमोद-वृत्ति, दु:खितों पर करुणावृत्ति और अविनीतजनों पर माध्यस्थ्यवृत्ति रखना चाहिए।

७—संवेग तथा वैराग्य के लिए जगत् और शरीर के स्वाभाव का विचार करना चाहिए।

८—प्रमत्तयोग से होने वाला प्राण-वध हिंसा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असदभिधानमनृतम् ॥९॥

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१०॥

मैथुनमब्रह्म ॥११॥

मूर्च्छा परिग्रहः ॥१२॥

निःशल्यो व्रती ॥१३॥

अगार्यनगारश्च ॥१४॥

अणुव्रतोऽगारी ॥१५॥

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकपौषधोप-

वासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथि-

संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९—असत् = झूठ बोलना, अनृत अर्थात् असत्य है।

१०—बिना दिये लेना, स्तेय अर्थात् चोरी है।

११—मैथुन अर्थात् विषय-सेवन अब्रह्म है।

१२—चेतन तथा अचेतन रूप किसी भी वस्तु पर ममत्व का भाव = परिणाम होना परिग्रह है।

१३—जो शल्य से रहित हो, वह व्रती हो सकता है।

१४—गृहस्थ-श्रावक और साधु के भेद से व्रती दो प्रकार के होते हैं।

१५—अणुव्रतधारी हो, वह आगारी-व्रती = श्रावक कहलाता है।

१६—गृहस्थ = आगारी व्रती दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, पौषधोपवास, उपभोगपरिभोग-परिमाण, और अतिथिसंविभाग, इन व्रतों से भी संपन्न होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारणान्तिकीं संलेखनां जोषिता ।।१७।।

शङ्काकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ।।१८।।

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।।१९।।

बन्धवधच्छविच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।।२०।।

मिथ्योपदेशरहस्याभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ।।२१।।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ।।२२।।

परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडातीव्रकामाभिनिवेशाः ।।२३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७—तथा वह मारणान्तिक संलेखना का आराधक भी होता है।

१८—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, और अन्यदृष्टिसंस्तव, ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार है।

१९—व्रतों और शीलों (गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों) के पाँच-पाँच अतिचार हैं। वे क्रमशः इस प्रकार है—

२०—बन्ध, वध = दण्ड आदि से ताड़न, छविच्छेद, अतिभार का आरोपण और अन्न-पान का निरोध, ये पाँच अतिचार प्रथम अणुव्रत के हैं।

२१—मिथ्योपदेश, रहस्याभ्याख्यान=असत्य-दोषारोपण, कूट-लेख की क्रिया, न्यास का अपहार और साकारमन्त्रभेद=गुप्त बात प्रकट करना—ये पाँच अतिचार दूसरे अणुव्रत के हैं।

२२—स्तेनप्रयोग, स्तेन-आहृतादान, विरुद्धराज्य का अतिक्रम, हीन=न्यून-अधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक=नकली वस्तु का व्यवहार, ये पाँच तीसरे अणुव्रत के अतिचार हैं।

२३—परविवाहकरण, इत्वरपरिगृहीतागमन, अपरिगृहीतागमन, अनंगक्रीड़ा और तीव्रकामाभिनिवेश, ये पाँच अतिचार चौथे अणुव्रत के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-
कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२४॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्त-
र्धानानि ॥२५॥

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गल-
क्षेपाः ॥२६॥

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणो-
पभोगाधिकत्वानि ॥२७॥

योगदुष्प्रणिधानादरस्मृत्यनुपस्थाप-
नानि ॥२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४—क्षेत्र=कृषि आदि के योग्य भूमि और वास्तु = गृह के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य = चांदी ओर सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी-दास के प्रमाण का अतिक्रम, एवं कुप्य=अनेक प्रकार के बर्तन, वस्त्र आदि सामान के प्रमाण का अतिक्रम, ये पाँच अतिचार पाँचवें अणुव्रत के हैं।

२५—ऊर्ध्वदिशा—व्यतिक्रम, अधोदिशा—व्यतिक्रम, तिर्यग्दिशा-व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तर्धान = गृहीत दिशामर्यादा का विस्मरण; ये पाँच अतिचार छठे दिग्विरतिव्रत के है।

२६—आनयनप्रयोग, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप, ये पाँच अतिचार सातवें देशविरतिव्रत के हैं।

२७—कन्दर्प, कौत्कुच्य मौखर्य, असमीक्ष्य-अधिकरण और उपभोग का अधिकत्व ये पाँच अतिचार आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत के हैं।

२८—कायदुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणिधान, मनोदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थापन; ये पाँच अतिचार सामायिक व्रत के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादाननिक्षेप-
संस्तारोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थाप-
नानि ॥२९॥

सचित्तसम्बद्धसंमिश्राभिष्वदुष्पक्व-
हाराः ॥३०॥

सचित्तनिक्षेपपिधानपरव्यपदेशमात्सर्य-
कालातिक्रमाः ॥३१॥

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्ध-
निदानकरणानि ॥३२॥

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३३॥

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्
तद्विशेषः ॥३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९—अप्रत्यवेक्षित और अप्रमाजित में मल आदि का उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमाजित वस्तु का आदन-निक्षेप, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित संस्तार का उपक्रमण, अनादर और स्मृति का अनुपस्थापन, ये पाँच अतिचार पौषधव्रत के हैं।

३०—सचित्त आहार, सचित्तसम्बद्ध आहार, सचित्तसंमिश्र आहार, अभिषव=मादक द्रव्य का आहार और दुष्पक्व=अधपका या ज्यादा पका आहार; ये पाँच अतिचार उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत के हैं।

३१—सचित पर निक्षेप, सचित्तपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम; ये पांच अतिचार अतिथिसंविभाग-व्रत के हैं।

३२—जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदानकरण; मारणान्तिकी संलेखना के ये पाँच अतिचार हैं।

३३—अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु के स्वत्व=ममत्व का त्याग करना दान है।

३४—दान की विधि, द्रव्य=देयवस्तु, दाता और पात्र=लेने वाले की विशेषता से दान की विशेषता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमोऽध्यायः

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्ध-
हेतवः ॥१॥

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्
पुद्गलानादत्ते ॥२॥

स बन्धः ॥३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधयः ॥४॥

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीया-
युष्कनामगोत्रान्तरायाः ॥५॥

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्वि-
पञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥६॥

मत्यादीनाम् ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ अध्याय

१—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग; ये पाँच बन्ध के हेतु हैं।

२—कषाय के सम्बन्ध से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है।

३—वह बंध कहलाता है।

४—प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश, ये चार बंध के प्रकार हैं।

५—पहला अर्थात् प्रकृतिबन्ध, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्क, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है।

६—उपर्युक्त आठ मूलप्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच भेद हैं।

७—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अविधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्यायज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण; ये पाँच भेद ज्ञानावरण के हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धिवेदनी-यानि च ।।८।।

सदसद्वेद्ये ।।९।।

दर्शनचारित्रमोहनीयकषायनोकषायवेदनी-याख्यास्त्रिद्विषोडशनवभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्या-त्वतदुभयानि कषायनोकषायावन-न्तानुबन्ध्याप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरण-संज्वलन-वि-कल्पाश्चैकशः क्रोधमान-मायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगु-प्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाः ।।१०।।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।।११।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि; ये पाँच वेदनीय = अनुभव; यों नौ दर्शनावरणीय हैं।

९—वेदनीय कर्म के सातावेदनीय और असाता-वेदनीय, ये दो भेद हैं।

१०—दर्शनमोह, चारित्रमोह, कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय के क्रमशः तीन, दो, सोलह और नौ भेद हैं; जैसे—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, तदुभय = सम्यक्त्वमिथ्यात्व, ये तीन दर्शन-मोहनीय है। कषाय और नोकषाय ये दो चारित्रमोहनीय हैं। जिनमें से क्रोध, मान, माया और लोभ, ये प्रत्येक अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन रूप से चार चार प्रकार के होने से सोलह भेद—कषायचारित्र-मोहनीय के होते हैं तथा हास्य, रति, अरिति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुँसकवेद; ये नौ नोकषाय चारित्रमोहनीय के होते हैं।

११—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, ये चार आयुष्य-कर्म के भेद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसङ्घा-
तसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्य-
गुरुलघूपघातपराघातातपोद्द्योतोच्छ्वास-
विहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्व-
रशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसि
सेतराणि तीर्थकृत्त्वं च ॥१२॥

उच्चैर्नीचैश्च ॥१३॥

दानादीनाम् ॥१४॥

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१५॥

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१६॥

नामगोत्रयोर्विंशतिः ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२—गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति और प्रतिपक्ष सहित अर्थात् साधारण और प्रत्येक, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयश और यश, एवं तीर्थकरत्व—यह बयालीस प्रकार का नामकर्म है।

१३—उच्च और नीच दो प्रकार का गोत्रकर्म है।

१४—दानादि में विघ्न करने वाला अन्तरायकर्म है। (१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय, (५) वीर्यन्तराय; ये अन्तरायकर्म के पाँच भेद हैं।

१५—पहली तीन क्रर्म-प्रकृतियों को अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय की तथा अन्तराय की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटीकोटी सागरोपम है।

१६—मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटीकोटी सागरोपम है।

१७—नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटीकोटी सागरोपम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रायस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष्कस्य ॥१८॥

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१९॥

नामगोत्रयोरष्टौ ॥२०॥

शेषाणामन्तर्मुहूर्तम् ॥२१॥

विपाकोऽनुभावः ॥२२॥

स यथानाम् ॥२३॥

ततश्च निर्जरा ॥२४॥

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाढस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्ता-नन्तप्रदेशाः ॥२५॥

सद्वेद्य-सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेद-शुभायु-र्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८—आयुष्कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम हैं।

१९—वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।

२०—नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मूहूर्त है।

२१—बाकी के पाँच अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्वराय, मोहनीय और आयुष्क की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है।

२२—विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति ही अनुभाव है।

२३—वह अनुभाव कर्मो के अपने-अपने नाम के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकृति=स्वभाव के रूप में वेदन किया जाता है।

२४—उससे अर्थात् वेदन से निर्जरा होती है।

२५—कर्म (प्रकृति) के कारणभूत सूक्ष्म, एक क्षेत्र को अवगाहन करके रहे हुए तथा अनन्तानन्त प्रदेश वाले पुद्गल योगविशेष से सभी ओर से सभी आत्मप्रदेशों में बन्ध को प्राप्त होते हैं।

२६—सात-वदेनीय, सम्यक्त्व-मोहनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, शुभ-आयु, शुभ-नाम और शुभ-गोत्र—इतनी प्रकृतियाँ ही पुण्यरूप हैं, बाकी की सभी पापरूप हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमोऽध्यायः

आस्रवनिरोधः संवरः ।।१।।

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ।।२।।

तपसा निर्जरा च ।।३।।

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।।४।।

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।।५।।

उत्तमः क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतप-स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।।६।।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वा शुचित्वा-स्रवसंवरनिर्जरालोकबोधि दुर्लभधर्मस्वा-ख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।।७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौवाँ अध्याय

१—आश्रव का निरोध संवर है।

२—वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।

३—तप से निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

४—योगों का प्रशस्त निग्रह गुप्ति है।

५—सम्यग्-निर्दोष ईर्या, सम्यग्-भाषा, सम्यग्-एषणा, सम्यग्-आदान-निक्षेप और सम्यग्-उत्सर्ग—ये पांच समितियाँ हैं।

६—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, और ब्रह्मचर्य—यह दस प्रकार का उत्तम धर्म है।

७—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व और धर्म का स्वाख्यातत्व-इनका अनुचिन्तन ही अनुप्रेक्षाएँ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः-

परीषहाः ।।८।।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-
स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽला-
भरोगतृणस्पर्शमलसत्कार पुस्कारप्रज्ञा-
ज्ञानादर्शनानि ।।९।।

सूक्ष्मसंपरायच्छद्मस्थवीतरागयो-
श्चतुर्दश ।।१०।।

एकादश जिने ।।११।।

बादरसंपराये सर्वे ।।१२।।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।।१३।।

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।।१४।।

चरित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोश-
याचनासत्कारपुरस्काराः ।।१५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८—धर्म-मार्ग से च्युत न होने और कर्मों की निर्जरा = क्षय के लिए जो सहन करने योग्य कष्ट सहे जायँ, वे परीषह हैं।

९—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नत्व, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ,रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन—ये कुल बाईस परीषह हैं।

१०—सूक्ष्मसम्पराय और छद्मस्थवीतराग में चौदह परीषह संभव हैं।

११—जिन (वीतराग तीर्थंकर) भगवान् में ग्यारह सम्भव हैं।

१२—बादरसम्पराय में सभी अर्थात् बाईस ही सम्भव हैं।

१३—ज्ञानावरण के निमित्त से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं।

१४—दर्शनमोह और अन्तरायकर्म से क्रमशः अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं।

१५—चारित्रमोह से नग्नत्व, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश,याचना, और सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदेकोनविं-
शतेः ॥१७॥

सामायिकच्छेदोपस्थाप्यपरिहारविशुद्धिसू-
क्ष्मसंपराययथाख्यातानि चारित्रम् ॥१८॥

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरि-
त्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं
तपः ॥१९॥

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्स-
र्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदं यथाक्रमं प्राग्ध्या-
नात् ॥२१॥

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्ग-
तपश्छेदपरिहारोपस्थापनानि ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६—शेष सभी परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होते हैं।

१७—एक साथ एक आत्मा में एक से लेकर १९ परीषह तक विकल्प से सम्भव हैं।

१८—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात—यह पाँच प्रकार का चारित्र है।

१९—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शय्यासन और कायक्लेश—ये ६ बाह्य तप हैं।

२०—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान—ये ६ आभ्यन्तर तप हैं।

२१—ध्यान से पहले के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ, चार, दस, पाँच और दो भेद हैं।

२२—आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापन—यह नौ प्रकार का प्रायश्चित्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥२३॥

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षकग्लानगण-
कुलसङ्घसाधुसमनोज्ञानाम् ॥२४॥

वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोप-
देशाः ॥२५॥

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो
ध्यानम् ॥ २७॥

आ मुहूर्तात् ॥२८॥

आर्तरौद्रधर्मशुक्लानि ॥२९॥

परे मोक्षहेतू ॥३०॥

आर्तममनोज्ञानां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय-
स्मृतिसमन्वाहारः ॥३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार—ये विनय के चार भेद हैं।

२४—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्षक, ग्लान, गण, कुल,संघ, साधु और समनोज्ञ—इस तरह दस प्रकार का वैयावृत्य है।

२५—वाचना, पृच्छाना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश—ये पाँच स्वाध्याय के भेद हैं।

२६—बाह्य और आभयन्तर उपाधि का त्याग—इस प्रकार व्युत्सर्ग के दो भेद हैं।

२७—उत्तम संहनन वाले व्यक्ति का किसी एक विषय में अन्त:करण की वृत्ति का निरोध=टिकाये रखना—ध्यान है।

२८—वह अनतर्मुहूर्त पर्यंत रहता है।

२९—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल—ये चार प्रकार के ध्यान हैं।

३०—उनमें से पर अर्थात् अन्तिम दो मोक्ष के कारण हैं।

३१—अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए सतत चिन्ता रखना, प्रथम आर्तध्यान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनायाश्च ॥३२॥

विपरीतं मनोज्ञानाम् ॥३३॥

निदानं च ॥३४॥

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३५॥

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३६॥

आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म मप्रमत्तसंयतस्य ॥३७॥

उपशान्तक्षीणकषाययोश्च ॥३८॥

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३९॥

परे केवलिन : ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२—दुःख आ पड़ने पर उसके दूर करने की सतत चिन्ता दूसरा आर्तध्यान है।

३३—प्रिय वस्तु के वियोग हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए सतत चिन्ता, तीसरा आर्तध्यान है।

३४—प्राप्त न हुई वस्तु की प्राप्ति के लिए संकल्प (मन में सतत चिन्ता) करना या निदान करना, चौथा आर्तध्यान है।

३५—वह आर्तध्यान, अविरल, देशविरत और प्रमत्तसंयत इन गुणस्थानों में ही सम्भव है।

३६—हिंसा, असत्य, चोरी और विषयरक्षण के लिए सतत चिन्ता, रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत गुण स्थानों में सम्भव है।

३७—आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान की विचारणा के निमित्त मनोवृत्ति का एकाग्र करना, धर्मध्यान है। यह अप्रमत्त संयत के हो सकता है।

३८—वह धर्मध्यान उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थानों में भी सम्भव है।

३९—उपशान्तमोह और क्षीणमोह में पहले के दो शुक्ल ध्यान सम्भव हैं। पहले के दोनों शुक्लध्यान पूर्वधर मुनि के होते हैं।

४०—अन्तिम दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्यु-
परतक्रियानिवृत्तीनि ।।४१।।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ।।४२।।

एकाश्रये सवितर्के पूर्वे ।।४३।।

अविचारं द्वितीयम् ।।४४।।

वितर्कः श्रुतम् ।।४५।।

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ।।४६।।

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शन-
मोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीण-
मोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण-
निर्जराः ।।४७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरत-क्रियानिवृत्ति—ये चार शुक्लध्यान हैं।

४२—यह शुक्लध्यान अनुक्रम से तीन योग वाला, किसी एक योग वाला, काययोगवाला और योगरहित होता है।

४३—पहले के दो शुक्लध्यान, एक आश्रय वाले एवं सवितर्क होते हैं।

४४—इनमें से पहला सविचार है और दूसरा अविचार है।

४५—वितर्क श्रुत को कहते हैं।

४६—विचार का अर्थ है—अर्थ, व्यंजन = शब्द और योग की संक्रान्ति = परिवर्तन।

४७—सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धि-वियो- जक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन—ये दस अनुक्रम से असंख्येय गुण निर्जना वाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका
निर्ग्रन्थाः ॥४८॥

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपात-
स्थानावकल्पतः साध्याः ॥४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक—ये पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ हैं।

४९—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपात और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का विचार करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशमोऽध्यायः

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥१॥

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्याम् ॥२॥

कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ॥३॥

औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च तद्गतिः ॥६॥

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवाँ अध्याय

१—मोह के क्षय से और फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के क्षय के केवल ज्ञान प्रकट होता है।

२—बन्धहेतुओं के अभाव और निर्जरा से कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होता है।

३—सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना ही मोक्ष है।

४—क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन और सिद्धत्व भाव के सिवाय औपशमिक आदि भावों तथा भव्यत्व के अभाव से मोक्ष प्रकट होता है।

५—सम्पूर्ण कर्मों के क्षय होने के बाद मुक्तजीवन तुरन्त ही लोक के अन्त तक ऊँचा चला जाता है।

६—पूर्व के प्रयोग से, संग के अभाव से, बन्धन के टूटने से और गति = मोक्षार्थ होने वाली गति के परिणाम से मुक्तजीव ऊँचा जाता है।

७—क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, अल्प-बहुत्व—इन बारह प्रकारों से सिद्ध जीवों का विचार करना चाहिए।

✱

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org